|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 6: आत्मसंयमयोग

4/4 (श्लोक 28-47), शनिवार, 11 मई 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/FZbfJ-Hmdxw

आत्मसंयम और भक्तियोग सर्वश्रेष्ठ है

गीता गीत, श्री हनुमान चालीसा पाठ, भारतमाता गीत, गुरु वन्दन और पारम्परिक दीप प्रज्ज्वलित करके आज के कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ।

विशेष बात यह है कि आज विवेचक महोदय किसी कार्यवश दुबई गए हुए है और वह वहीं से हमें सम्बोधित कर रहे है। आज आत्मसंयम योग के अन्तिम भाग का विवेचन हम सुनेंगे। हम लोगों ने यह सुना कि भगवान ने स्वयं ज्ञान की विधा हमें सुनाई। उस ज्ञान की विधि की चर्चा भगवान क्रमशः करते रहे। यम और नियम की पालना किस प्रकार होनी चाहिए इसके विषय में भगवान ने हमें बताया। योगासन के लिए हम लोगों को सीधा बैठने को कहा गया। सीधा बैठने का एकमात्र कारण होता है कि चेतना के लिए आवश्यक प्राणवायु की पूर्ति हमारे मस्तिष्क को हो। इसके लिए हम सीधा बैठें क्योंकि सीधा बैठने के बाद हमारी कमर, हमारी ग्रीवा और हमारा मस्तिष्क सब एक पंक्ति में हो जाते हैं। उसके बाद भगवान ने बताया कि सीधा बैठने के बाद हमारे शरीर में जो वायु का आना-जाना यानी इनहेलेशन (inhalation) और एक्जहेलेशन (exhalation) होता रहता है। उसको समान करने से हमारे शरीर में अद्भुत घटनाएं घटने लगती हैं। वास्तव में देखा जाए तो ध्यान इस शब्द में ही सारी बात आ जाती है। हम बातचीत में ही कहते है कि इस कार्य को ध्यान से करना। इस का मतलब होता है इस कार्य को कॉन्शसनेस (consciousness) से करना है । जब हम ध्यान करने बैठते हैं तो हमारे मन को सचेत होना आवश्यक है। हमारा मन पूर्ण रूप से इस पर एकाग्र होना चाहिए। जब हम आँखे मूँद कर गहरी साँस ले कर विविध प्रकार के ध्यान करते हैं उसमें सबसे पहले धारणा करते हैं। उस अवस्था में हम प्रेक्षक बन जाए और बड़ी सजगता से अपनी आती-जाती साँसों को देखें। हमारी नाक के नीचे और होंठ के ऊपर किस प्रकार से संवेदन हो रहा है, उस को देखें। नाक से होती हुई साँस जब अन्दर पहुँचती है तो उसका स्पर्श कैसा होता है, गर्म होता है या ठण्डा होता है। हमारे फेफड़ों में कहाँ तक साँस पहुँच रही है, केवल ऊपरी फेफड़ों में जा रही है या भीतर तक जा रही है। खासकर जब सुबह स्नान आदि करके भगवान के सामने जाकर बैठते हैं, तब यह करना बहुत उपयोगी है। एक साँस यदि आपके फेफड़ों के तल तक पहुँच जाए तो देखिए आप कितना सुकून महसूस करते हैं। इसके पश्चात यदि हम काम को प्रारम्भ करते हैं तो वह बहुत सजगता से होता है। कोई भी काम यशस्वी करना है तो सजगता से करना चाहिए। सवेरे काम पर निकलने से पहले यदि हम अपने देवालय में बैठकर यह क्रिया करते हैं तो हमारे सब काम यशस्वी हो जाते हैं। तो कल से आप जब सुबह भगवान के सामने बैठेंगे तो सीधे बैठना। लम्बी गहरी साँस लेना, फिर प्राण को एकाग्र करना। फिर थोड़ी देर तक अपने श्वास पर ध्यान केन्द्रित करना। आप देखना कि आपके पैर के नाखून से, तलवे से, घुटने से, पेट से, हाथों से और शरीर के सभी अङ्गों से कैसी संवेदना जाग रही है। यदि खुजली भी आए तो करना मत सिर्फ देखते रहना वह अपने आप चली जाएगी। यही धारणा है। **धारणा अर्थात ध्यान केन्द्रित करना**। श्वास की प्रेक्षा करने के बाद विचार की प्रेक्षा करनी है। देखना है कि हमारे मन में विचार कैसे आ रहे हैं। बस देखना है किसी प्रकार के विचारों को

आमन्त्रण नहीं देना है। ना ही उसकी श्रृङ्खला बनाना है, ना ही उसमें फँसते जाना है। बस आते-जाते विचारों को देखना है। न ही अवरोध है, न ही स्वागत है और न ही आमन्त्रण है। बस प्रेक्षक बन कर देखते रहना है। इस पूरी प्रक्रिया में एक विचार के जाने में और दूसरे विचार के आने के बीच में एक क्षण आता है कि जब मन में कोई विचार रहता ही नहीं। यह जो शून्य है, यही ध्यान की प्रक्रिया है। जिस क्षण मन विचारों से रहित हो जाता है, उसी क्षण मन विकारों से मुक्त हो जाता है। उस क्षण आप पाप मुक्त रहते हैं। इस विचार शून्यता के समय को लम्बा करते जाना है। आप निरन्तर अभ्यास करते रहें और फिर उस शून्य में आपको भगवान का अधिष्ठान करना है। वहाँ पर ईश्वर की प्राण प्रतिष्ठा करनी है। जब तक शून्य की प्रतीक्षा हुई, ध्यान नहीं हुआ, जैसे ही शून्य प्राप्त हुआ ध्यान शुरू हो गया। यह जो ध्यान है, यह सगुण ध्यान है इसके बारे में हमें बारहवें अध्याय में बताया गया। यह सबसे आसान कार्य है। मीराबाई ने नृत्य के साथ इस शून्य को साधा है। सूरदास जी ने इसे संगीत के माध्यम से साधा है। हम भी नृत्य और संगीत के द्वारा इस शून्य को प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु ध्यान का मार्ग सबसे आसान है। आवश्यक नहीं कि आपका इष्ट श्रीकृष्ण ही हो। आप जिस रूप की चाहें उसकी आराधना कर सकते हैं। आप राम की भी उपासना कर रहे हैं तो उनके भी अनेक रूप है, बालक राम, कोदंड धारी राम, वनवासी राम, राजाराम अनेक प्रकार से ध्यान कर सकते हैं। आप किसका ध्यान कर रहे हैं यह महत्वपूर्ण नहीं, वरन् कैसे ध्यान कर रहे हैं यह महत्त्वपूर्ण है। आपको बस अपने ध्यान के समय को बढ़ाना है, जैसे-जैसे आप समय बढ़ाएँगे, आपके सुख की अनुभूति बढ़ती जाएगी।

6.28

युञ्जन्नेवं(म्) सदात्मानं(म्), योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तं(म्) सुखमश्नुते॥28॥

इस प्रकार अपने आपको सदा (परमात्मा में) लगाता हुआ पाप रहित योगी सुखपूर्वक ब्रह्म प्राप्ति रूप अत्यन्त सुख का अनुभव कर लेता है

विवेचन: जो निष्पाप योगी इस प्रकार से आत्मा को परमात्मा से जोड़ कर रहता है उसे परमात्मा की प्राप्ति का अपार आनन्द का अनुभव भी होता है। वह व्यक्ति किस प्रकार सुखपूर्वक परमात्मा की प्राप्ति को अनुभव करता है। इसका वर्णन आगे के श्लोक में किया गया है।

6.29

सर्वभूतस्थमात्मानं(म्), सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शनः॥29॥

सब जगह अपने स्वरूप को देखने वाला और ध्यानयोग से युक्त अन्तःकरण वाला (सांख्ययोगी) अपने स्वरूप को सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित देखता है (और) सम्पूर्ण प्राणियों को अपने स्वरूप में (देखता है)।

विवेचन: आत्मसाक्षात्कार का अत्यन्त आसान रास्ता भगवान ने बताया है कि फिर हमारे मन की भावना ऐसी हो जाती है कि

तू है सर्वत्र व्याप्त हरि।
तुझमें सारा यह संसार॥
इसी भावना से अंतर भर।
मिलूँ सभी से तुझे निहार॥

प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से।
जो कुछ भी आचार करूँ॥
केवल तुझे रिझाने को बस।
तेरा ही व्यवहार करूँ॥

भगवान का यह रूप निरन्तर देखते रहिए कि उनके पैरों में कितनी सुन्दर पायल बँधी हुई है, कि उनका पीताम्बर कितना सुन्दर है। किस प्रकार की सलवटे हैं। किस प्रकार कमर पर कमरबन्द बाँधा गया है।

भगवान की कटि कितनी कोमल है और उनका वक्ष स्थल कितना कठोर है। यह सभी बातें आपको देखने को मिलेंगी। किस प्रकार की कुञ्जमाला उन्होंने अपने गले में धारण की है। कानों में कौन-से कुण्डल शोभित हैं, हाथों में कौन से कंङ्गन हैं। बाजूबन्द कैसे बँधे हुए हैं, हर चीज़ को देखते-देखते आगे बढ़ेंगे तो बड़ा आनन्द आता है। उनके चेहरे की मुस्कुराहट देखकर आपके चेहरे पर भी मुस्कान आनी चाहिए। वह प्रसन्नता आपके चेहरे पर भी दिखनी चाहिए। इतना सुन्दर स्वरूप देखकर हमारी आँखे भर आती है । रामलला की प्राण प्रतिष्ठा के समय भी ऐसी ही अनुभूति हम सभी को हुई थी। हमने स्वयं देखा कि हमारे प्रधानमंत्री जी ने भगवान को दण्डवत प्रणाम किया और बाहर आकर हमारे स्वामी जी के हाथ से चरणामृत पान किया। अपना उपवास तोड़ा। जब यह एक-एक क्षण हम देख रहे थे और भगवान की सुन्दर मूर्ति देखकर सभी की आँखों से आँसू टपक रहे थे। यह इसलिए हो रहा था क्योंकि अत्यन्तम सुख का क्षण था। जिस राम की सबने इतने वर्षों तक प्रतीक्षा की उन्हें सामने देखकर सब भाव-विभोर हो रहे थे। सभी शबरी बन गए थे जिनके आँगन में राम आए थे। जब शबरी के आश्रम में राम ने प्रवेश किया तो शबरी की आँखों से निरन्तर आँसू बहने लगे, तब भगवान ने कहा कि मेरे पद प्रक्षालन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। शबरी तो रोज ही भगवान के चरण धुलाने के लिए पानी गर्म करके रखती थी, परन्तु भगवान ने कहा कि अब इसकी आवश्यकता नहीं रही। जब रामलला की प्राण प्रतिष्ठा हो रही थी तब बिल्कुल यही घटना घट रही थी। उसे समय सारे लोग अपने आप में ध्यान मग्न हो चुके थे, सब आत्मविभोर थे। प्रकाश हमेशा प्रकाश ही रहता है चाहे वह मोमबत्ती का हो या सूर्य का या फिर कोई ट्यूबलाइट लगा हो या कोई दीपक जल रहा हो। दोनों के बीच में हम अन्तर नहीं कर सकते। इसी प्रकार सभी प्राणियों में समरसता दिखाई देने लगती है। सारे संसार के ऊपर एक ही आकाश फैला हुआ है। जो आकाश भारत के ऊपर है वहीं पाकिस्तान के भी ऊपर है इस प्रकार सम्पूर्ण संसार में एक ही आकाश व्याप्त है। तो हर एक चीज का भाव आत्मतत्व एक ही है यह बात हमारी समझ में आने लगती है।

6.30

यो मां(म्) पश्यति सर्वत्र, सर्वं(ञ्) च मयि पश्यति।
तस्याहं(न्) न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति॥30॥

जो (भक्त) सब में मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

विवेचन: हमको कुत्ते में, गाय में, अन्य सभी में, हमें तो सब जगह भगवान दिख गए लेकिन भगवान को भी ऐसा ही लगता है। उसके लिए भगवान ने बहुत सुन्दर बात कही कि ऐसे भक्त के लिए मैं कभी अदृश्य नहीं होता। उसके लिए वह सदा नजर आते रहेंगे। वह भगवान के हृदय में सदा-सदा के लिए रहता है। **दूसरों के दुख में दुख मनाना बड़ा आसान होता है परन्तु जो दूसरे के सुख में भी प्रसन्न हो जाता है, ऐसा व्यक्ति मिलना थोड़ा कठिन है।** यदि हम दूसरों के सुख में आनन्द मनाये तो स्वाभाविक रूप से हम अन्दर से आनन्दित रहने लग जाते है। भगवान ने कहा है कि मन की प्रसन्नता से ही सारे दुखों की हानि हो सकती है और बुद्धि का सामर्थ्य प्राप्त होता है। जिसका मन प्रसन्न है वह किसी को भी फिर दुःखी नहीं देख सकता। चोट किसी को भी लगे दर्द इस व्यक्ति को होता है।

सन्त नामदेव महाराज जब इन्द्राणी के तट पर जाते हैं तो देखते हैं कि इतनी गर्मी में एक गधा प्यास से तड़प रहा है। दूर से लेकर आए पानी का हंडा वह उस गधे को पिला देते है। वह पूजा करने के लिए कई किलोमीटर चल कर आए थे परन्तु जब उन्होंने घड़े का पानी उसे तड़पते हुए गधे को पिला दिया। सब लोग आश्चर्य चकित हो गए कि महाराज यह क्या कर रहे हैं। भगवान के लिए लाया हुआ पानी गधे को पिला रहे है। इस पर नामदेव महाराज ने कहा कि फर्क कहाँ है, मेरा तो विट्ठल यहीं खड़ा है। उस गधे में भी उन्होंने भगवान को ही देखा। भगवान कहते हैं कि जो योगी इस राह पर चल पड़ते हैं उनके साथ इस तरीके की घटना घट जाती है।

6.31

सर्वभूतस्थितं(म्) यो मां(म्), भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, स योगी मयि वर्तते॥31॥

(मुझमें) एकीभाव से स्थित हुआ जो भक्तियोगी सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित मेरा भजन करता है, वह सब कुछ बर्ताव करता हुआ भी मुझ में (ही) बर्ताव कर रहा है अर्थात् वह नित्य निरन्तर मुझमें ही स्थित है।

विवेचन: हम सभी वस्त्र पहनते हैं और वह तन्तु से बनता है तो फिर सभी ने एक ही वस्तु के वस्त्र पहन रखे हैं। फिर फर्क कहाँ रहा? कोई सोने का कङ्गन पहना है, कोई अन्य आभूषण,पर पहनते तो सब सोना ही हैं, सबका मूलतत्त्व जो स्वर्ण है वह तो एक ही है। वृक्ष पर पत्तियाँ चाहे कितनी भी हों परन्तु उसका मूल एक ही है। इसी प्रकार सब का शरीर एक जैसा है। अतः आत्मतत्त्व की प्रधानता समाप्त हो जाती है। वह शरीर में है परन्तु शरीर नहीं है, जब यह भावना प्रबल हो जाएगी तब जब शरीर छूटेगा तो उसके प्रति कोई राग मोह माया नहीं रहेगी। उस समय बड़ी सरलता से भगवत नाम का समर्पण करते हुए प्राण शरीर से अलग हो जाएँगे। मुँह से ॐ का उच्चारण करते हुए जब वह शरीर मैं नहीं हूँ तो शरीर के पीड़ा का भागीदार भी मैं क्यों बनूँ यह विचार मन में आ जाएगा। तब कोई पीड़ा भी महसूस नहीं होती और यह घटना अन्तिम समय में घटती है। इसके लिए लगातार प्रयास करते रहना होगा।

6.32

आत्मौपम्येन सर्वत्र, समं(म्) पश्यति योऽर्जुन।
सुखं(म्) वा यदि वा दुःखं(म्), स योगी परमो मतः॥32॥

हे अर्जुन ! जो (भक्त) अपने शरीर की उपमा से सब जगह (मुझे) समान देखता है और सुख अथवा दुःख को (भी समान देखता है), वह परम योगी माना गया है।

विवेचन: भगवान ने बार-बार अनेक अध्यायों में समत्त्व की भावना पर जोर दिया है दूसरे अध्याय में ही वह कहते हैं कि अर्जुन सबको समत्त्व भाव से देखो।

मन और बुद्धि का समत्त्व बहुत आवश्यक है,
सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं(म्) पापमवाप्स्यसि॥२.३८॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।2.14।।

प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः(स्), स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥२.५५॥

जो इस भाव को प्राप्त कर लेता है उसके लिए भीतर और बाहर मैं कोई भेद नहीं रहता। जो भीतर है वही बाहर है। जब घट को नदी में पानी से भरा जाता है तो वह अन्दर से खाली होता है और उसके बाहर ही पानी होता है। घट को पानी से भरने के बाद घट के बाहर भी पानी और अन्दर भी पानी। अन्दर का पानी कोई अलग नहीं होता है। केवल बीच में घट आ जाता है। घट के बाहर जो प्रकाश है वही प्रकाश अन्दर भी है दोनों में कोई अन्तर नहीं है। इसीलिए हमारे यहाँ जब अन्तिम संस्कार होता है तो एक घट घर से लेकर जाते हैं और शमशान में उस घट की चिता के चारों ओर तीन बार परिक्रमा करवाई जाती है उसके बाद मृत व्यक्ति का पुत्र घट को पीछे की ओर फेंकता है और घट टूट जाता है। यह सांकेतिक है कि हमारा शरीर भी एक घट के समान है। जब शरीर चला गया तो बाहर का आकाश और अन्दर का आकाश सब एक हो गया। तेरा मेरा की भावना समाप्त हो जाती है। मृत्यु के बाद तो यह हो ही जाता है परन्तु यदि यह जीते-जी हो जाए तो अद्भुत घटनाएँ घटने लगती हैं। यह सब सुनकर अर्जुन ने कहा।

6.33, 6.34

अर्जुन उवाच
योऽयं(म्) योगस्त्वया प्रोक्तः(स्), साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं(न्) न पश्यामि, चञ्चलत्वात्स्थितिं(म्) स्थिराम्॥33॥
चञ्चलं(म्) हि मनः(ख्) कृष्ण, प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं(न्) निग्रहं(म्) मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ॥34॥

अर्जुन बोले - हे मधुसूदन ! आपने समतापूर्वक जो यह योग कहा है, (मन की) चंचलता के कारण मैं इस योग की स्थिर स्थिति नहीं देखता हूँ।
कारण कि हे कृष्ण ! मन (बड़ा ही) चंचल, प्रमथनशील, दृढ़ (जिद्दी) (और) बलवान है। उसको रोकना मैं (आकाश में स्थित) वायु की तरह अत्यन्त कठिन मानता हूँ।

विवेचन: अर्जुन शरणागत हैं। वह भगवान से प्रार्थना करके पूछते हैं कि मन को स्थिर कैसे करें। मन तो त्रैलोक्य की सैर करना चाहता है। यह मन बड़ा चञ्चल है और इसको वश में करना वायु को वश में करने के समान है। भगवान अर्जुन को अपना मित्र और शिष्य मानकर समझते हुए आगे कहते है।

6.35

श्रीभगवानुवाच
असंशयं(म्) महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं(ञ्) चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते॥35॥

श्रीभगवान् बोले - हे महाबाहो ! यह मन बड़ा चंचल है (और) इसका निग्रह करना भी बड़ा कठिन है - यह तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु हे कुन्तीनन्दन! अभ्यास और वैराग्य के द्वारा (इसका) निग्रह किया जाता है।

विवेचन: भगवान कहते हैं हे अर्जुन! यह मन तो सचमुच बहुत चञ्चल है परन्तु अभ्यास से और वैराग्य से इसको वश में किया जा सकता है। **वैराग्य का अर्थ है हमारी पाँचों इन्द्रियों पर हमारा संयम रहे**। खाने की चीज देखते ही खाने को मन ना करे। हम बगैर किसी अपेक्षा के अपना सब काम करते रहें। इस बात का अभ्यास करना पड़ेगा। **अभ्यास का अर्थ है प्रैक्टिस**। केवल सुनने और पढ़ने से यह नहीं होगा इसके लिए निरन्तर प्रयत्न करना पड़ता है। रोज इसके लिए समय निकालना होगा क्योंकि मन कभी भी एक जगह पर टिकता नहीं है, यह बहुत ही कमाल का है। वह हमारे लिए वरदान भी है और अभिशाप भी। जब हम कोई कार्य शुरू करते हैं तो प्रारम्भ में बहुत जबरदस्ती मन को लगाना पड़ता है, फिर धीरे धीरे उसमें आनन्द आने लगता है। जब लेवल एक में गीता जी की कक्षा में प्रवेश किया तो मन में कितने ही विचार थे कि हम संस्कृत कैसे पढ़ेंगे? हमने तो कभी संस्कृत पढ़ी ही नहीं है। फिर जब एक लेवल पूरी कर ली तो धीरे-धीरे समझ में आने लगा और इसमें मन को भी आनन्द आने लगा और फिर कण्ठस्थ करने का प्रयास करने लगे। मन का बड़ा ही विचित्र स्वभाव है, यह विषयों की तरफ बहुत जल्दी आकर्षित होता है और विषयों की पूर्ति करते रहो तो बार-बार उसी की तरफ जाता है। मन को जहाँ लगाओ वहीं लगने लगता है। संयम में लगाओ तो संयम में लगता है और विकार में लगाओ तो विकार में लग जाता है। विकास में लगाओ तो विकास में लगता है इसे कहाँ लगाना है? यह आपकी अपनी इच्छा है।

जीवन में ए, बी, सी, डी को सदा याद रखना चाहिए।

B से Birth और D से डेथ। इसके बीच में जो C है वह चॉइस का है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः(र्), ध्रुवं(ञ्) जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥२.२७॥

जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हो गई उसका पुन: जन्म लेना भी निश्चित है। यह निरन्तर चलते रहने वाला है और हमारे हाथ में नहीं है।

बर्थ और डेथ के बीच में हम अपने जीवन को कैसे बिताना चाहते हैं वह हमारी चॉइस है। मन को सद् विचारों में लगाना है या बुरे कामों में यह चॉइस हमारी अपनी है। यह हम तय करने वाले हैं। हमें मानव तन बड़ी कठिनाई से मिला है। यही जन्म ऐसा है जहाँ हम भक्ति कर सकते हैं। कभी-कभी हम कोई वीडियो मे देखते है कि कुत्ता या गाय या बन्दर या हाथी जाकर मन्दिर में प्रणाम करते हैं परन्तु ऐसा बहुत कम देखने में आता है। लेकिन मनुष्य यह कर सकता है। यह हमारे अपने हाथ में है कि हमें स्वर्ग की तरफ चलना है या नरक की तरफ चलना है। स्वर्ग यानी अच्छे कर्म करो और आगे अच्छा जीवन पाओ नरक यानी बुरे कर्म करो और बुरा जीवन बिताओ। ऐसा भी हो सकता है कि गुणातीत हो जाओ और पुनर्जन्म ना हो। हमें भगवान के चरणों में स्थान मिल जाए पर यह बहुत कठिनाई से होता है।

6.36

असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥36॥

जिसका मन पूरा वश में नहीं है, उसके द्वारा योग प्राप्त होना कठिन है। परन्तु उपायपूर्वक यत्न करने वाले (तथा) वश में किये हुए मन वाले साधक को (योग) प्राप्त हो सकता है, ऐस

विवेचन: भगवान ने कहा कि निग्रह से अपने मन को साक्षात्कार के मार्ग पर लाना है। मोक्ष के मार्ग पर पहुँचने के लिए आपको केवल योगमार्ग ही आगे बढ़ायेगा। अब अर्जुन फिर प्रश्न पूछते हैं। अर्जुन के प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह हमारे मन के ही प्रश्न है।

6.37, 6.38

अर्जुन उवाच
अयतिः(श्) श्रद्धयोपेतो, योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं(ङ्), कां(ङ्) गतिं(ङ्) कृष्ण गच्छति॥37॥
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टः(श्), छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो, विमूढो ब्रह्मणः(फ्) पथि॥38॥

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! जिसकी साधन में श्रद्धा है, पर जिसका प्रयत्न शिथिल है, (वह अन्त समय में अगर) योग से विचलितमना हो जाय, (तो) (वह) योगसिद्धि को प्राप्त न करके किस गति को चला जाता है
हे महाबाहो ! संसार के आश्रय से रहित (और) परमात्मप्राप्ति के मार्ग में मोहित अर्थात् विचलित (इस तरह) दोनों ओर से भ्रष्ट हुआ साधक क्या छिन्न-भिन्न बादल की तरह नष्ट तो नहीं हो जाता ?

विवेचन: अर्जुन भगवान से पूछते है, हे कृष्ण! जो इस योग पर श्रद्धा रखता है परन्तु केवल उसमें संयम नहीं है, ऐसे व्यक्ति का मन अन्तिम काल में योग से विचलित हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को योगसिद्धि
नहीं होती है। फिर वह कौन सी गति को जाते है?

हे महाबाहो! भगवत प्राप्ति के मार्ग में मोहित होने वाला और विचलित होने वाला पुरुष छिन्न-भिन्न बादलों की तरह नष्ट तो नहीं हो जाता?

6.39

एतन्मे संशयं(ङ्) कृष्ण, छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः(स्) संशयस्यास्य, छेत्ता न ह्युपपद्यते॥39॥

हे कृष्ण! मेरे इस सन्देह का सर्वथा छेदन करने के लिये (आप ही) योग्य हैं; क्योंकि इस संशय का छेदन करने वाला आपके सिवाय दूसरा कोई हो नहीं सकता।

विवेचन: यहाँ पर अर्जुन भगवान से बहुत ज्यादा प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान आपके अलावा मेरी इन सब समस्याओं को और कोई भी दूर नहीं कर सकता है केवल आप ही हैं जो मेरा संशय मिटा सकते हैं। हे कृष्ण! मुझे बताइए कि जो योग मार्ग पर नहीं चल पाते हैं उनका क्या परिणाम होता है ? कृपया करके मुझे विस्तार से समझाइए।

6.40

श्रीभगवानुवाच
पार्थ नैवेह नामुत्र, विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्, दुर्गतिं(न्) तात गच्छति॥40॥

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन ! उसका न तो इस लोक में (और) न परलोक में ही विनाश होता है; क्योंकि हे प्यारे ! कल्याणकारी काम करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं जाता।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि तुम अपना कर्म करते रहो और फल को ईश्वर के ऊपर छोड़ दो।

कर्म किए जा फल की इच्छा मत कर ऐ इंसान।
जैसा कर्म करेगा वैसा फल देगा भगवान॥
जो संसार के कल्याणकारी कार्य में लग जाता है उसकी इस लोक में और परलोक में भी कभी दुर्गति नहीं होती।

जो कभी चींटी को भी कष्ट नहीं देता, सब को समान रूप से देखता है, उसका क्या होता है इसका जवाब भगवान ने अगले श्लोक में दिया है।

6.41

प्राप्य पुण्यकृतां(म्) लोकान्, उषित्वा शाश्वतीः(स्) समाः।
शुचीनां(म्) श्रीमतां(ङ्) गेहे, योगभ्रष्टोऽभिजायते॥41॥

(वह) योगभ्रष्ट पुण्य कर्म करने वालों के लोकों को प्राप्त होकर (और) (वहाँ) बहुत वर्षों तक रहकर (फिर यहाँ) शुद्ध (ममता रहित) श्रीमानों के घर में जन्म लेता है।

विवेचन: ऐसे लोग अनेक वर्षों तक स्वर्ग में रहने के बाद, पृथ्वी पर अच्छे सत्पुरुषों के घर में जन्म लेते हैं। हम सभी जो गीता पढ़ रहे हैं, हमने अच्छे घरों में जन्म लिया है। आप सभी को भरपेट भोजन मिल रहा है तभी आपने गीता सीखने का प्रयत्न किया क्योंकि भूखे पेट भजन ना होए गोपाला। आपके पिताजी, आपके ससुर, आपके पति आदि ने यह व्यवस्था कर दी तभी तो इस मार्ग पर चल रहे हैं। गीता पढ़ना भी एक योग मार्ग है। हम जो पुष्पिका पढ़ते हैं उसमें भी

श्रीमद्भागवतगीतासु उपनिषत्सु
योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे आता है।

हम भी कई बार अपने मिलने-जुलने वालों को बताते हैं कि गीता का नया सत्र प्रारम्भ हो रहा है, पर सभी इस में नहीं जुड़ते हैं पर आप सभी लोग इस मार्ग पर पिछले जन्म में चल चुके हैं, इसीलिए अब भी इसमें आपको रुचि बनी हुई है।

चौथे अध्याय में भगवान ने कहा है
बहूनि मे व्यतीतानि, जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं(वँ) वेद सर्वाणि, न त्वं(वँ) वेत्थ परन्तप॥४.५॥

हे अर्जुन मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं तू वह नहीं जानता परन्तु मैं जानता हूँ। मुझे सब याद है। पिछले जन्म की पीड़ा इस जन्म में भी साथ चलती है परन्तु यदि अन्तिम समय में पीड़ा भूल कर भगवान में ध्यान लग जाए तो फिर वह पीड़ा वहीं छूट जाती है। इससे भी उत्तम क्या होता है, यह भगवान ने अगले श्लोक में कहा है।

6.42

अथवा योगिनामेव, कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं(म्), लोके जन्म यदीदृशम्॥42॥

अथवा (वैराग्यवान् योगभ्रष्ट) ज्ञानवान् योगियों के कुल में ही जन्म लेता है। इस प्रकार का जो यह जन्म है, (यह) संसार में निःसंदेह बहुत ही दुर्लभ है।

विवेचन: वैराग्यवान मनुष्य फिर किसी योगी के घर में जन्म लेता है। यहाँ पर उसे रुपया पैसा अधिक नहीं प्राप्त होता क्योंकि उनका रजोगुण समाप्त हो जाता है और सतगुण बढ़ जाता है। फिर वह अभाव में रहना भी सीख लेता है। जहाँ अभाव होता है वहाँ अत्यधिक सञ्चय करने का भाव भी समाप्त हो जाता है। जब माता-पिता योगी हैं तो वह अपने बच्चे को बचपन से ही योग सिखाएंगे। यह जन्म ज्यादा भाग्यशाली है। योगियों के कुल में जन्म लेना बहुत दुर्लभ है। जैसे ज्ञानेश्वर महाराज का जन्म योगियों के कुल में हुआ था। उनके पिताजी तो संन्यास लेने के लिए चले गए थे किन्तु पत्नी को बिना बताए गए थे इसलिए उन्हें लौटना पड़ा। उनके चार बच्चे हुए। ज्ञानेश्वर महाराज ने बारह वर्ष की अवस्था में शास्त्र लिख दिए। यह सब एक योगी के घर में जन्म लेने के कारण ही हुआ है।

6.43

तत्र तं(म्) बुद्धिसंयोगं(म्), लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः(स्), संसिद्धौ कुरुनन्दन॥43॥

हे कुरुनन्दन ! वहाँ पर उसको पहले मनुष्य जन्म की साधन-सम्पत्ति (अनायास ही) प्राप्त हो जाती है। फिर उससे (वह) साधन की सिद्धि के विषय में पुनः (विशेषता से) यत्न करता है।

विवेचन: ऐसे व्यक्ति की पिछले जन्म में किए हुए साधना के संस्कार की सम्पत्ति सञ्चित रहती है और इस जन्म में भी याद रहती है। साधारण मनुष्य पिछले जन्म का सब कुछ भूल जाता है लेकिन इन लोगों को योग के संस्कार अपने आप प्राप्त हो जाते हैं और वह आगे प्रगति करता है।

6.44

पूर्वाभ्यासेन तेनैव, ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य, शब्दब्रह्मातिवर्तते॥44॥

वह (श्रीमानों के घर में जन्म लेने वाला योगभ्रष्ट मनुष्य) (भोगों के) परवश होता हुआ भी उस पहले मनुष्य जन्म में किये हुए अभ्यास (साधन) के कारण ही (परमात्मा की तरफ) खिंच जाता है; क्योंकि योग (समता) का जिज्ञासु भी वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों का अतिक्रमण कर जाता है।

विवेचन: आप इस जन्म में गीता कक्षा में आए और गीता जी को समझने का प्रयास करने लगे यह बहुत सौभाग्य की बात है। जब स्तर एक प्रारम्भ होता है तो करीब पचास हजार लोग उसमें नामाङ्कन करते हैं परन्तु स्तर दो और स्तर तीन तक आते-आते

सङ्ख्या बहुत कम हो जाती है। आप सभी जो स्तर (लेवल) तीन में और विवेचन में उपस्थित हैं यह सब आपके पूर्व जन्मों में किए गए अच्छे कार्यों का फल है। अब जब यह समझ आ गया है तो इस मार्ग को छोड़ना नहीं है।

6.45

प्रयत्नाद्यतमानस्तु, योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्ध:(स्), ततो याति परां(ङ्) गतिम्॥45॥

परन्तु जो योगी प्रयत्नपूर्वक यत्न करता है (और) जिसके पाप नष्ट हो गये हैं तथा जो अनेक जन्मों से सिद्ध हुआ है, वह योगी फिर परमगति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: भगवान कहते हैं जो योगी प्रयत्न पूर्वक अभ्यास करते है, उनके पिछले अनेक जन्मों के संस्कार के भरोसे वह इस जन्म में पूर्ण सिद्धि को प्राप्त होते है। ऐसे योगी सर्व पाप से भी मुक्त होते हैं और परम गति को प्राप्त हो जाते है।

6.46

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन॥46॥

(सकाम भाव वाले) तपस्वियों से (भी) योगी श्रेष्ठ है, ज्ञानियों से भी (योगी) श्रेष्ठ है और कर्मियों से भी योगी श्रेष्ठ है (ऐसा मेरा) मत है। अतः हे अर्जुन ! (तू) योगी हो जा।

विवेचन: भगवान कहते हैं तपस्या करने वाले तपस्वियों से भी योगी श्रेष्ठ है। ज्ञानियों से भी योगी श्रेष्ठ है। सकाम कर्म करने वाले लोगों से भी योगी श्रेष्ठ है इसलिए **हे अर्जुन ! तुम योगी बन जाओ।**

6.47

योगिनामपि सर्वेषां(म्), मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां(म्), स मे युक्ततमो मतः॥47॥

सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान् भक्त मुझ में तल्लीन हुए मन से मेरा भजन करता है, वह मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ योगी है।

विवेचन: यहाँ पर भगवान ने योगी को सर्वश्रेष्ठ कहा है। योगी का अर्थ है जो भक्ति में लीन है। क्योंकि भगवान ने कर्मयोग, सांख्ययोग, ज्ञानयोग आदि अलग-अलग मार्ग बताए हैं। जहाँ पर भी सिर्फ योगी कहा गया है वह भक्तियोग के लिए है। भगवान इसे सबसे आसानी से किया जाने वाला योग कहते हैं। यह हमें भगवान ने छठे अध्याय में, बारहवें अध्याय में और फिर अठारहवें अध्याय में भी समझाया है। हर छ: अध्याय के बाद भगवान आपको सही मार्ग पर ले आते हैं। भगवान हमें तीन बार अन्तराल लेकर यह समझाना चाहते हैं। किन्तु यदि हम तब भी न समझे तो फिर कुछ नहीं हो सकता। भगवान कहते हैं जो श्रद्धावान भक्त मुझ में तल्लीन हो जाते हैं वह मुझे प्राप्त कर ही लेते हैं। भक्त बनने के लिए कोई वेद और शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं है जब एक बार भक्त बन जाते हैं तो यह सब चीज अपने आप आ जाती हैं। अपने आप ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है इसलिए भक्त बनना ही श्रेयस्कर है। सर्वश्रेष्ठ योगी वही होंगे जो श्रद्धा से मुझे भजते रहेंगे भगवान ने अन्तिम श्लोक में यह बात कह दी है।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु के साथ इस विवेचन सत्र का समापन हुआ।

प्रश्नोत्तर के सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- गायत्री दीदी
प्रश्न- योगियों के घर मे योगी जन्म लेते हैं वहाँ पर विवंचना के कारण उनका ध्यान भटक सकता है क्या?
उत्तर- उनके घर में कोई अडचन नहीं हो इसके भी जिम्मेदारी भगवान लेते है। भगवान ने कहा ही है कि मैं योगक्षेम की जिम्मेदारी लेता हूँ। ज्ञानेश्वर महाराज के पिताजी ने आत्मसमर्पण कर दिया था किन्तु कुछ अच्छे लोगों ने ज्ञानेश्वर महाराज और उनके भाई बहनों का ख्याल रखा। वे उनको भिक्षा दे देते थे। इसलिए उन्होंने अपनी साधना पूरी की थी। उनकी जरूरत भी कम होती है । भौतिक चीज उनको परेशान नहीं करती है। इसलिए योगियों के घर में यह समस्या नहीं होती है।

प्रश्नकर्ता- स्वपन भैया
प्रश्न- प्राण और अपान, प्राणायाम की प्रक्रिया क्या है?
उत्तर- प्राण बाहर जाने वाली और अपान अन्दर आने वाली साँस को कहते है । अगर साँस के ऊपर नाम चढ़ा देते है, तो हम मंत्र उच्चारण साधना करते है। समान समय (ड्यूरेशन) में साँस को लेना है और छोडना, नाम के साथ। कुछ दिन के बाद आप सजग नही है, फिर भी यह नाम की साधना चलती रहती है। ऐसा दस बार भी करेंगे तो ऑक्सीजन की कमी नही रहेगी। यह बहुत अच्छा व्यायाम है।

प्रश्नकर्ता-विजया दीदी
प्रश्न- हम सर्वत्र समदर्शन कैसे साध सकते है? हम तो संसारी लोग है । घर में अगर चींटी और कॉकरोच होते है, तो वह घर को नुकसान पहुँचाते है, हमको उन्हें मारना पड़ता है फिर यह सर्वत्र समदर्शन कैसे हुआ? हम इसको कैसे साध सकते है?
उत्तर- कोई भी काम दोष रहित नहीं होता है। यज्ञ करते समय, रसोई करते समय कुछ ना कुछ दोष रह जाते है। भगवान ने स्वयं यह बात मानी है जो सहज कर्म है, जन्म से प्राप्त कर्म है, उसमें दोष है किन्तु उसे त्यागना नहीं है। सारी चीजों में दोष देखेंगे तो दुनिया में नहीं चला जा सकता। सभी कर्म में कुछ ना कुछ दोष है। बिना वजह किसी की हत्या ना करें बाकी आटे में चीटियाँ है तो उसे निकालना हीं पड़ेगा उसमें कोई दोष नहीं है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में आत्मसंयमयोग' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||